National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.nationaljournals.com
ISSN: 2455-9040
Received: 19-09-2021, Accepted: 04-10-2021, Published: 20-10-2021
Volume 6, Issue 4, 2021, Page No. 5-8

रीतिकालीन कविता में नीति कवियों की काव्यात्मकता

दीपाली

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

नीतिकाव्य की दृष्टि से रीतिकाल अपने नैतिक आदर्शों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस काल में आकर नीति जैसे नियम को स्वतंत्र रचना के अंतर्गत व्यापकता और विविधता के साथ प्रस्तुत किया गया है। रीतिकालीन नीति कवियों में गिरिधर कविराय अपनी कुंडलियों, दीनदयाल अपनी अन्योक्तियों, घाघ और भड्डरी कृषि सम्बन्धी तथा ज्योतिष सम्बन्धी कहावतों, बैताल अपनी विनोक्तियों और विरोधी तथ्यों तथा वृन्द अपनी सतसई के कारण प्रख्यात हुए हैं। नीति को साथ लेकर चलते हुए जहाँ एक ओर ये रीतिकालीन कवि समाज में व्यवहृत आचरण और व्यवहार पर चिंता जाहिर करते हैं वहीं मनुष्य को विद्या, धन, सत्संगति, कर्म, आदि का महत्त्व बताते हुए उन्हें उचित मार्ग पर चलने की नीति भी सिखलाते हैं। व्यवहार की वह रीति जो इस स्वार्थ सिद्धि और अतिआधुनिकता की दौड़ में आवश्यक बन पड़ती है उसे भी रीतिकाल के ये नीति कवि सरल शब्दों में कुंडलियाँ, छप्पय, दोहा, आदि छंदों के माध्यम से सिखाने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं।

मूल शब्द: नीति

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा का 'नीति' शब्द 'णीय' धातु के साथ भावार्थक 'क्तिन्' प्रत्यय के मेल से बना है, जिसके अनुसार इस शब्द का अर्थ 'ले जाना' या 'ले चलने की क्रिया (भाव)' होता है।

नीति के कोशगत अर्थ के अनुसार, नेतृत्व, देख-रेख, आदेश, व्यवस्था, आचरण, आचार-विधि कार्य-प्रणाली, औचित्य, मर्यादा, कूटनीति, व्यवहार कुशलता, बुद्धि योजना, राजनीति विज्ञान, राज्य मर्यादा, राजनैतिक बुद्धि, पवित्रता, नैतिक आचरण, नैतिकता, नीति विज्ञानं, नीति दर्शन, श्रम द्वारा प्राप्त विद्या, योग्यता आदि समस्त कार्य-कलाप नीति में समाहित हैं।[1] इस प्रकार जीवन से संबंधित ये सभी पक्ष नीति के अंतर्गत आते हैं।

डॉ. रामस्वरूप शर्मा शास्त्री की दृष्टि में, "उचित व्यवहार (कर्त्तव्य) का नाम नीति है।"[2]

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "नीति शब्द 'णीय' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'ले जाना' । इस प्रकार नीति वह है जो आगे ले जाए। अर्थात् नीति के सहारे हम अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते हैं। लौकिक साहित्य में व्यवहार तथा ले जाने वाली अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। लौकिक साहित्य तथा हिंदी में इस शब्द का प्रयोग राजनीति, कूटनीति, पॉलिसी, उपाय, कार्यविधि, लोक-व्यवहार आदि अर्थों में मिलता है। इस प्रकार की बातों का जिस कविता में वर्णन हो, वह नीति-काव्य' है।"[3] इस प्रकार समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति कराने के लिए जिन विधि या निषेध मूलक वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देश, काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है उसे नीति से अभिहित किआ जा सकता है।

सरल शब्दों में, उचित - अनुचित के व्यवहार का ज्ञान और प्रेरणा प्रदान करने वाली नीति ही है। जिसमें जीवन के प्रवृति तथा निवृतिपरक विचारों के द्वारा समाज को सचेत किया जाता है।

भारत में नीतिकाव्य रचने की परम्परा रही है। जिसका प्रमुख उद्देश्य भारतीय जीवन में कर्तव्य पालन के पथ पर आने वाले भटकाव को रोकना रहा है। प्राचीन काल में नीति काव्य की समृद्ध परंपरा संस्कृत से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश में रही है, जो बाद में हिंदी में इसी गति के साथ आगे बढ़ते हुए हिंदी साहित्य के मध्यकाल में एक प्रमुख धारा नीतिकाव्य धारा के रूप में नीति कवियों द्वारा तत्कालीन, वर्तमान व भावी समाज की पथ-प्रदर्शक रही है।

नीतिकाव्य की दृष्टि से मध्यकाल में भी रीतिकाल अपने नैतिक आदर्शों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस काल में आकर नीति जैसे नियम को स्वतंत्र रचना के अंतर्गत व्यापकता और विविधता के साथ प्रस्तुत किया गया है. जो पहले देखने को नहीं मिलता।

डॉ. रामस्वरुप शास्त्री जी ने भी अपने ग्रन्थ "हिंदी नीतिकाव्य का विकास" में इस सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "नीतिकाव्य की दृष्टि से जो महत्त्व रीतिकाल का है वह न आदिकाल का है, न भक्तिकाल का। आदिकाल में हिंदी की एक भी काव्य कृति ऐसी उपलब्ध नहीं होती जिसका एक मात्र प्रधान विषय नीति हो। भक्तिकाल में तुलसीदास, देवीदास, रहीम, गंग आदि सुकवियों ने नीति विषयक और नीति बहुल मौलिक और अनुवादात्मक रचनाएँ अवश्य प्रस्तुत की, परन्तु रीतिकाल अवधि की दृष्टि से भक्तिकाल की अपेक्षा दो-तिहाई से कम होता हुआ भी नीतिकाव्य की दृष्टि से उसकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।"[4]

रीतिकाल में नीतिकाव्य लिखने वाले कवियों की एक बड़ी संख्या है। वर्गीकृत रूप में देखा जाए तो ऐसी रचना करने वाले पांच प्रकार के कवि हमारे सामने आते हैं जो कि इस नीतिकाव्य से जुड़े हुए हैं- प्रमुख नीतिकाव्यकार, अनुवादक कवि, शृंगारिक कवियों के काव्य में नीति के काव्य नीति तत्व, संग्रह ग्रंथों में नीतिकाव्य और फुटकर नीति कवि। इन पाँचों प्रकार के नीति कवियों में भी प्रमुख नीतिकवियों का अपना विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः ये ही नीति कवियों के रूप में साहित्य जगत में अधिक प्रसिद्ध हैं। इन कवियों में मुख्य रूप से गिरधर, दीनदयाल गिरि, घाघ, भड्डरी, बैताल और वृन्द आते हैं।

इनमें गिरिधर कविराय अपनी कुंडलियों, दीनदयाल अपनी अन्योक्तियों, घाघ और भड्डरी कृषि सम्बन्धी तथा ज्योतिष सम्बन्धी कहावतों, बैताल अपनी विनोक्तियों और विरोधी तथ्यों तथा वृन्द अपनी सतसई के कारण प्रख्यात हुए हैं।

गिरिधर की कुंडलियों में उनके नैतिक आदर्श संतों के नीतिकाव्य के समान ही हैं परन्तु विशेषता यह है कि इनके काव्य में ऐहिकता की मात्रा संतों से अधिक है। वैयक्तिक नीति में गिरिधर ने शरीर को मालागर तथा प्रेम के अयोग्य कहा है और प्रेम की दशा में औषध-सेवन की अपेक्षा गंगाजल के पान को विशेष महत्त्व दिया है-

तज के दवा हकीम की, पान करै गंगवार।
देहपात सों ना डरे, पुनिं वृढ़ करै विचार।।[5]

सूरा, अफीम, गांजा, चरस, भंग, हुक्का आदि से अपने शरीर तथा बुद्धि के बल को बिगाड़ने वालों की गिरिधर ने अनेक पद्यों में खूब खबर ली है-

हुक्का से हुरमत गयी, नियम धर्म गयो छूट।
दाय खर्च लियो तमाकू, गई हिये की फूट।।
कह गिरिधर कविराय, लगै जब यम को रुक्का।
प्राण जायेंगे छूट सहाय होवैं नहिं हुक्का।।.....[6]

जहाँ गुरु के प्रति श्रद्धा, वर्णाश्रम तथा स्त्रियों की निंदा, संगति का भला-बुरा प्रभाव, दुर्जन, अतिथि-सत्कार आदि विषयों के प्रति गिरिधर का दृष्टिकोण संतों का सा ही है वहीं यथायोग्य व्यवहार अर्थात् वह व्यवहार की रीति में उनसे बिल्कुल पृथक नैतिकता का प्रसार करते हैं-

जो तुझको तोला झुके, तू झुक सेर पचीस।
मरोर करे इक तस्सू भर, तू कीजे हाथ बईस।।
कीजे हाथ बईस रीति व्यवहार की ऐसी।
जैसा जैसा देव जगत में पूजा तैसी।।..[7]

गिरिधर कविराय ने अपनी कुंडलियों में गाँव, जाति, परिवार, राजदरबार आदि में किस प्रकार की नीति को अपनाना चाहिए इस पर विचार किया है। इनकी लोकप्रियता का कारण है- सरल भाषा में अपने नीति से जुड़े विचारों का अभिव्यक्तिकरण। इन्होनें काव्य रचना में आलंकारिक चमत्कार का सहारा न लेकर दृष्टांत के माध्यम से अपने विचारों को प्रमाण पुष्ट बनाया है। लक्ष्मी की चंचलता के विषय में इनकी कुंडलियाँ मानव मात्र को शिक्षा देने वाली है-

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाऊँ न रहत निदान।।..[8]

दीनदयाल गिरी जी का नैतिक आदर्श स्वाधीनता से शुरू होता है। जहाँ वे कहते हैं-

पराधीनता दुःख महा, सुग जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै, कनक पींजरे दीन।।[9]

गिरी जी के नीति काव्यों में प्रायः सामान्य प्राप्य विषयों के अतिरिक्त अनेक ऐसी बातों का उल्लेख मिलता है जो कि सामान्य तौर पर नीति काव्यों में नहीं मिलता और न ही जिनकी आशा एक सन्यासी कवि से की जा सकती है। जैसे- दुर्जन को विपत्ति से मत बचाओं, लोग पुनीत जन की नहीं मलिन जन की पूजा करते हैं, सुरूप का भी सगुन के समान सम्मान होता है, समर्थ व्यक्तियों की बुद्धि तथा चाल-ढाल लोक-विरुद्ध होती है, पत्नी व्रत, पराधीनता और स्वाधीनता, मनुष्य का स्वयं का दोष न देखकर दूसरों को दोषी ठहराना, कार्य की सम्पन्नता प्रेम और खोज पर निर्भर करती है,बड़े या छोटे पर नहीं इत्यादि।

दीनदयाल जी के मत में यद्यपि सांसारिक लोग संकट में साथ नहीं देते हैं, तथा विवेकहीन होने के कारण सरल का नहीं कुटिल का आदर करते हैं, तथापि उनके साथ प्रेम-पूर्वक रहने का ही उद्योग करना चाहिए। इन्होनें पांडे(ब्राहमण), क्षत्रिय, बनिक(वैश्य), माली, कुलाल, दरजी आदि अनेक व्यवसाइयों पर मनोरम अन्योक्तियाँ रची हैं परन्तु इसमें इनका उद्देश्य व्यवसाय-विशेष से प्राप्य शिक्षा की ओर संकेत करना है-

हे पांडे यहि बात को, को समझै या ठांव।
इतै न कोऊ है सुधी, यह ग्वारन को गाँव।।...
बरनै दीनदयाल, छाँछ भरि लीजै भांडे।
कहा कहौ इतिहास, सुनै को इत हे पांडे।।...[10]

स्त्रियों के सम्बन्ध में इनके विचार संकीर्ण ही कहे जा सकते हैं क्योंकि दीनदयाल जी स्त्रियों को आत्मा की शाश्वत-यात्रा में बाधक मानते हैं। इन्होंने वास्तविक प्रेम उसी को कहा है जिसका निर्वाह अंत तक किया जा सके। यद्यपि परम्परा-निर्वाह के लिए चातक के प्रेम की अनन्यता का वर्णन इन्होने भी किया है-

वै तो मानत तोही नहिं, तें कित भर्यो उमंग।
नहिं दीपहिं कछु दरद क्यों. जरि जरि मरै पतंग।।...[11]

घाघ की लोकोक्तियों से विदित होता है कि इन्हें कृषि, ज्योतिष, और नीति का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि उनकी अधिकतर रचना खेती-बाड़ी से सम्बंधित है तथापि नीति-विषयक एक सौ के लगभग जो लोकोक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उनसे इनके गंभीर अनुभव का भी खासा परिचय मिल जाता है।

आठ कठौती मट्ठा पीवै, सोरह मकुनी खाय।
उसके मरे न रोइये, घर का दरिद्र जाय।।
बाँध बांस बिगहा बिया बारी बेटा बैल।
त्यौहार बढाई बन बबुर बात सुनो यह छेल।।
जो बकार बारह बसे, सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दे सदा, आप रहे अलमस्त।।....[12]

भड्डरी राजस्थान के एक ज्योतिष भी थे तथा वृष्टि और कृषि के सन्दर्भ में विशेष अनुभव रखते थे। जैसे उत्तर प्रदेश तथा बिहार में घाघ तथा पंजाब में भड्डरी की कहावतों का ग्रामीण लोगों में विपुल प्रचार है वैसे ही राजस्थान तथा पंजाब में भड्डरी की कहावतों का। इनकी दो सौ के लगभग कहावतें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से अधिकतर के विषय वर्षा, सुकाल, अकाल, महंगी, विनाश-लक्षण आदि हैं। घाघ के सामान इनकी कहावतें भी दोहा, चौपाई आदि छंदों में निबद्ध हैं। परन्तु उन्हें सरसता-रहित होने के कारण पद्य मात्र ही मनना उचित है काव्य नहीं। जैसे –

अपनी छींक महा दुखदाई। कह भड्डर जोसी समुझाई।
अपनी छींक सम बन गयऊ। सीता हरन तुरंतै भयऊ।।
सोम सनीचर पुरुब न चाल। मंगर बुद्ध उतर दिसि काल।
जो बिहफे को दक्खिन जाय। बिना गुनाहै पनहीं खाय।।...[13]

बैताल कवि की नीति उनके द्वारा रचित छप्पय में दृष्टिगत होती है जो सामान्य जन में बहुत प्रचलित रहे हैं। इनमें व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी नीतियों को बेहद ही सरल तथा स्पष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में, "रहीम, वृन्द या दीनदयाल की भांति यद्यपि बैताल ने अलंकारों द्वारा अपने छंदों में प्रभविष्णुता तथा आकर्षण लाने का प्रयास प्रायः नहीं किया है, तथापि अपने अनूठेपन का अभाव नहीं है। इस अनूठेपन का प्रमुख सूत्र शब्दों की आवृति है जो नीति की बातों को जोरदार ढंग से कहने के लिए बहुत उपयुक्त है।"[14]

बैताल की विशिष्टता है, प्रतिपाद्य विषय को परस्पर विरोधी तथ्यों द्वारा प्रभावशाली बनाना। छप्पय के प्रथम चार-पांच चरणों में तो वे एक ही प्रकार के तथ्यों को निहित करते हैं परन्तु षष्ठ चरण में एक ऐसा तथ्य प्रस्तुत कर देते हैं जो पूर्व तथ्यों का सर्वथा विरोधी होता हुआ हृदय में तीर की तरह धंस जाता है-

राजा चंचल होय, मुलुक को सर करि लावे।
पंडित चंचल होय, सभा उत्तर दे आवे।।
हाथी चंचल होय, समर में सूडी उठावे।
घोड़ा चंचल होय, झपर मैदान देखावे।।
ये चारों चंचल भले, रजा पंडित गज पुरी।
'बैताल' कहे विक्रम सुनो, तिरिया चंचल अति बुरी।।...[15]

इन्होने लोक जीवन के अनेक विषयों को अपनी नीति विषयक छप्पय का आधार बनाया है। इनकी विशेषता इनकी सरलता रही है। सीढ़ी-सादी बात को ज्यों का त्यों कविता में कहना इनकी पहचान है। पर फिर भी इनकी कला में अनूठापन मिलता है। इनकी नीति की कुंडलियों का उदाहरण-

मरे बैल गरियार मरे वह अड़ियल टट्टू।
मरे करकसा नारी, मरे ह खसम निखट्टू।।
बाम्हन सो मरि जाय, हाथ ले मदिरा प्यावे।
पूत वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावे।।
अरु बेनियाव राजा मरे, तबे नींद भर सोइए।
बैताल कहे विक्रम सुनो, एते मरे न रोइए।।[16]

वृन्द नीति काव्य परम्परा की एक उज्जवल कड़ी के सामान हैं। नीतिकारों में वे प्रथम पंक्ति के कवि माने जाते हैं। हिंदी में ये अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने दो सतसई की रचना की- नीति सतसई और यमक सतसई।

वृन्द की सतसई ऐसे नीति कथनों का भंडार है जिनमें उनकी पैनी दृष्टि का परिचय भी मिल जाता है। सतसई की प्रशंसा करते हुए डॉ. रामस्वरूप शर्मा शास्त्री का कथन है, "सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रायः उन्हीं विषयों का उल्लेख नहीं हैं, जिन पर प्रायः नीतिकार लिखा करते हैं बल्कि ऐसी अनेक बातों की भी चर्चा है जिनका वर्णन प्रायः उपेक्षित रहता है।"[17] डॉ. भोलानाथ तिवारी भी वृंद के नीति कथनों के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं. "इसकी नीतियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है और जीवन के अनेकानेक कोनों का स्पर्श करता है।"[18]

वृन्द का समाज में नजदीकी सम्बन्ध रहा है। उन्होंने मध्यवर्गीय समाज और उच्चवर्गीय समाज को अपनी आँखों से देखा था। उन्होंने दोनों प्रकार के समाजों में अनेक कटुताओं को देखा था, अनुभव किया वृन्द ने समाज के लिए जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदर्श प्रस्तुत किये थे। आज उन्हें ही उनके नैतिक आदर्श का नाम दिया जाता है। वृन्द का विचार है कि व्यक्ति के पास चाहे जितनी भी संपत्ति हो, गुण के बिना सब व्यर्थ है, क्योंकि व्यक्ति का आदर गुणों से ही होता है-

मान होत है गुनहिं ते, गुन बिन मान न होई।
सुक सारी राखे सबे काग न राखे कोई।।

मनुष्य में गुणों की प्राप्ति सत्संगति और विद्या के माध्यम से ही संभव है। सत्संगति का प्रभाव वर्णित करते हुए वृंद ने कहा है कि व्यक्ति अच्छी संगति से सुख प्राप्त करता है और बुरी संगति से कष्ट होता है। जैसे गंधी जी के साथ बैठने से सुगंध प्राप्त होती है, किन्तु लुहार की संगति में रहने से धौंकनी का धुँआ तथा जले हुए लोहे की दुर्गंध प्राप्त होती है।

होत सुसंगति सहत सुख दुःख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की देखहु बैठि दुकान।।[19]

वृन्द के अनुसार सरस्वती का यह भण्डार विलक्षण है। यह व्यय करने पर बढ़ता है और बिना व्यय से कम हो जाता है। अर्थात् विद्या का सही उपयोग उसके विस्तार में है। ज्ञान को यदि पुस्तकों के रूप में बंद करके रख दिया जाये तो उसकी उपयोगिता नहीं रह जाती है।-

सरसुती के भण्डार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचे घटि जात।।[20]

इसलिये उन्होंने व्यक्ति के लिए विद्या प्राप्त करना आवश्यक समझा है तभी तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि अच्छी विद्या यदि नीच के पास भी है तो उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए। कविवर वृन्द ने व्यक्ति को सत्य के मार्ग पर चलने के लिये कहा है। और यही आज भी समाज का स्वस्थ दृष्टिकोण है क्योंकि सत्य सदैव स्थाई और अनश्वर है । वृन्द ने जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए उद्यम अथवा पुरुषार्थ पर अत्यधिक बल दिया है। उनका विचार है कि परिश्रम के द्वारा सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

स्रम ही तें सब मिलत है बिन स्रम मिले न काहि।
सीधी अंगुरी घी जम्यौ क्यों हू निकरै नाहिं।।
करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान।
रसरि आवत जात री सिल पर परत निसान।।[21]

वृन्द ने समाज में नीति की चर्चा करते हुए छोटे और बड़े यानी कि निम्न और उच्च वर्ग के लोगों के विषय में भी अपनी नीति-विषयक बातें कही हैं। उनका मानना है कि छोटे को बड़े लोगों के साथ रहना चाहिये। उनके साथ रहने से उनकी भी उन्नति उसी प्रकार होती है जिस प्रकार वृक्ष के साथ बेल भी बढ़ती चली जाती है-

रहे समीप बड़ेन के होत बड़ों हित मेल।
सबहीं जानत बढ़त है वृक्ष बराबर बेल।।

"सूक्तिकारिता में वृन्द पूरे हिंदी साहित्य में अद्वितीय हैं। सीधे उपदेश देने की प्रवृति तो उनमें जैसे है ही नहीं। वे प्रायः सभी बातों को बड़े सटीक दृष्टान्तों से प्रमाणित करते हैं।"[22] ऐसे ही दृष्टांत के माध्यम से अर्थ नीति के अंतर्गत कवि वृन्द ने समझाया है कि व्यक्ति को अपनी आय के अनुसार ही व्यय करना चाहिए-

अपनी पहुँच बिचारि के करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये जेती लाम्बी सौर।।[23]

समग्रता में हिंदी के रीतिकालीन नीतिकाव्य को शैली की दृष्टि से प्रमुखतः तीन वर्गों उपदेश, अन्योक्ति और सूक्ति में रख कर देखा जा सकता है जिसमें उपदेशात्मक शैली का प्रयोग बिना वाग्वैदग्ध्य के घाघ, भड्डरी तथा गिरिधर कविराय ने विशेष रूप से किया है। अन्योक्ति शैली का नीतिकाव्य विशेष रूप से दीनदयाल गिरी द्वारा रचित है। सूक्ति शैली में लिखा गया गिरी का नीतिकाव्य कला की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है। साथ ही अन्योक्ति के माध्यम से नीति की चर्चा वृन्द के काव्य में भी दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवि नीति को साथ लेकर चलते हुए जहाँ एक ओर समाज में व्यवहृत आचरण और व्यवहार पर चिंता जाहिर करते हैं वहीँ मनुष्य को विद्या, धन, सत्संगति, कर्म, आदि का महत्त्व बताते हुए उन्हें उचित मार्ग पर चलने की नीति भी सिखलाते हैं। व्यवहार की वह रीति जो इस स्वार्थ सिद्धि और अतिआधुनिकता की दौड़ में आवश्यक बन पड़ती है उसे भी रीतिकाल के ये नीति कवि सरल शब्दों में कुंडलियाँ, छप्पय, दोहा, आदि छंदों के माध्यम से सिखाने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. सं. कालिकाप्रसाद शर्मा; वृहद हिंदी कोश; ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी: पृष्ठ – 612.
2. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 15.
3. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 1.
4. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 457.
5. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 505.
6. वही;

7. वही; पृष्ठ संख्या – 506
8. डॉ. टंडन, पूरनचन्द; रीति काव्यधारा – 2; स्वराज प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ – 76
9. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 112.
10. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 110-111.
11. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 563.
12. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 502.
13. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 578.
14. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 61.
15. वही; पृष्ठ संख्या – 62.
16. वही.
17. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 468.
18. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 76.
19. डॉ. टंडन, पूरनचन्द; रीति काव्यधारा – 2; स्वराज प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ – 89
20. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 86.
21. डॉ. शास्त्री, रामस्वरूप शर्मा; हिंदी में नीति काव्य का विकास; दिल्ली पुस्तक सदन; संस्करण 1962; पृष्ठ संख्या 477.
22. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 76.
23. डॉ. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी नीति काव्य-धारा; किताब महल, प्रथम संस्करण – 1984; पृष्ठ संख्या – 77.